दिल्ली पुलिस की अपनी

स्टंटबाज़ी भी उतनी ही घातक है

दिल्ली (म.मो.) सड़कों पर मोटरसाइकिलों से स्टंट करने वाले नौजवानों के खिलाफ़ सख्त कार्यवाही के नाम पर दिल्ली पुलिस ने 27-28 जुलाई की रात एक बाइक सवार कर्ण पांडे को गोली मार दी। पुलिस का कहना है कि स्टंटबाज़ों के ऐसे बाइक-गिरोह काफ़ी दिनों से सड़कों पर ट्रैफ़िक भंग कर रहे थे और आने-जाने वालों को तरह-तरह से परेशान करते आ रहे थे।

उस रात दिल्ली के वी.वी.आई. पी. क्षेत्र में तकरीबन 30 स्टंटबाज़ों ने तांडव मचाना शुरू किया। समझाने में नाकाम रही पुलिस ने पहले हवा में गोलियां चलाईं और फ़िर एक बाइक के पिछले टायर पर निशाना लगाया। पर निशाना चूकने से गोली बाइकसवार के पीछे बैठे पांडे को छेदती हुई चलाने वाले को भी छूती हुई निकल गयी। दिल्ली पुलिस के मुताबिक बाइकसवार ने मोटरसाइकिल को ऐन वक्त पर पिछले पहिये पर उठा लिया था जिससे गोली टायर को न लगा कर सवार को जा लगी।

परिस्थितियां कुछ भी रही हों पर देर रात को लगभग खाली सड़क पर स्टंट करते बाइकर्स पर गोली चलाने का कोई औचित्य नहीं हो सकता। भारतीय फ़ौजदारी कानूनों में केवल उन्हीं हालात में किसी की जान लेने का हक पुलिस के पास है जब ऐसा अपनी या किसी अन्य की जान बचाने या बलात्कार, जानलेवा आगजनी, जान से मारने की नीयत से अगवा करने, जैसे अपराधों की रोकथाम के लिये हो। मौजूदा मामले में ऐसी कोई भी आशंका नहीं थी।

बाइकर्स की बदमाशियां, जैसा कि दिल्ली पुलिस का कहना है, कई महीनों से चल रही थीं। जिस तरह 27-28 जुलाई रात्रि की घटना को निपटाया गया उससे तो नहीं लगता कि दिल्ली पुलिस ने कोई स्पष्ट रणनीति इस मामले में बनाई हो। वरना तकनीकी और कानूनों के सही इस्तेमाल से इन उपद्रवियों पर कब का अंकुश लग गया होता। आलम तो यह है कि ऐसे मामलों में पहले दर्ज मुकदमों में गिरफ़्तारियां तक नहीं हुई हैं। मौजूदा घटना के बाद दिल्ली पुलिस अब दावा कर रही है कि उसने पहले ऐसे बहुतेरे बाईकर्स का चालान किया है और उन पर जुर्माना भी लगाया है। चालान या जुर्माना अकेले-दुकेले ट्रैफ़िक नियम तोड़ने वालों के लिये होते हैं। संगठित गिरोहों गिरोहों के लिये कानून में अलग धारायें हैं। जैसे भारतीय दण्ड संहिता की धारायें, 147,184,149, 341, 342, 279, 336, 283, 186, 353, 332 इत्यादि। साथ ही मोटर साइकिलों को जब्त किये जाने का प्रावधान है। पर दिल्ली पुलिस ने ऐसा नहीं किया। क्यों?

यदि तकनीकी (कैमरे, वीडियो, साइबर) की सहायता से उपद्रवियों की पहचान की जाती और घेरा, नाकाबंदी, बैरीकेड, बैरियर लगाकर उन्हें पकड़ा जाता तो गोली मारने की नौबत न आती। दरअसल सचाई यह है कि देश की राजधानी में भी, 21 वीं शताब्दी में भी, पुलिस को लोकतान्त्रिक मूल्यों एवं कानून के शासन से खास लेना-देना नहीं है। इतनी ही अहम बात यह है कि उनका नेतृत्व काफ़ी हद तक कनिष्ठ कर्मियों से कटा हुआ है। मौजूदा मामले में भी मौके पर भेजने से पहले सम्बन्धित पुलिसकर्मियों को स्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं दिये गये थे। लिहाजा, जिसकी समझ में जो आया उसने वह कर दिखाया।

मौजूदा मामले में दिल्ली पुलिस के पास आत्मरक्षा का तर्क भी नहीं हो सकता। यदि मान भी लिया जाये कि चलती बाइकों से उनपर पथराव हो रहा था तो भी वह इतना घातक नहीं हो सकता था कि गोली चलाई जाये। कायदे से दिल्ली पुलिस को मामले में भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304 के अन्तर्गत मुकदमा दर्ज करना चाहिये था। पर इससे पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियों की अपनी पोल भी खुलती है क्योंकि उन्होंने न कोई रणनीति बनाई और न कार्यवाही से पहले के दिशा-निर्देशों के महत्व को समझा। दिल्ली पुलिस को अब भी समझना चाहिये कि केवल काग़जी कार्यवाही दिखाकर या आंकड़ों की बाज़ीगरी चमका कर वे राजधानी के नागरिकों का विश्वास नही जीत सकते।

स्कूल पक्के तौर पर बंद करने जा रही हरियाणा सरकार

चंडीगढ (म.मो.) महंगे निजी स्कूलों में हज़ारों रुपये मासिक फ़ीस चुकाने में असमर्थ जो लोग अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में पढाते थे उन्हें पढाई से वंचित करने का पक्का निर्णय राज्य की सरकार ने ले लिया है।

पिछले कई बरसों के सतत प्रयासों द्वारा सरकार ने अपने स्कूलों में पढाई का माहौल बिगाड़ा। स्कूल पढने की जगह न रहने देकर कर केवल खिचड़ी और वह भी गली सड़ी बीमार करने वाली, खिलाने के बाड़े बना छोड़े। शिक्षकों के पदों पर नालायक, निकम्मे व कामचोर भर्ती कर दिये गये। उसके बाद भर्ती बिल्कुल बंद। तीसियों हज़ार शिक्षकों के पद खाली पड़े हैं।

जो शिक्षक हैं भी उनसे बच्चे पढाने की बजाय बाकी सब काम कराये जाते हैं; जैसे कि जनगणना, चुनावी कार्य, प्लस पोलियो इत्यादि। गणतन्त्र दिवस और स्वतन्त्रता दिवस की तैयारियों के नाम पर अनेकों शिक्षक महीनों गायब रहते हैं। फ़रीदाबाद का फ़रवरी में लगने वाला सूरजकुंड का मेला भी यहां के शिक्षकों के लिये एक बहुत जरूरी काम होता है। शिक्षा विभाग के अफ़सर बाबुओं से काम न ले सकने की स्थिति में शिक्षकों से बाबूगिरी कराने के लिये उन्हें अपने दफ़तरों में तैनात कर लेते हैं। अपने चहेते शिक्षकों को स्कूल से मुक्ति दिलाने के लिये भी कुछ अधिकारी उनकी तैनाती स्थाई रूप से अपने कार्यालय में लगाये रहते हैं।

ऐसे माहौल में जब पढाई संभव ही न हो तो बच्चे पास कैसे हो सकते हैं। सरकार ने इसका भी हल ढूंढ निकाला। नौवीं जमात तक किसी को फ़ेल ही मत करो, सबको पास कर दो। इसका परिणाम दसवीं में सारे फ़ेल। केवल वही 10-15 प्रतिशत पास हो पाते हैं जिनके पास अपने आप पढने के अन्य विकल्प होते हैं। इन हालात में कौन अपने बच्चों को दिन भर सरकारी बाड़ों में बैठने को भेजेगा? इससे बेहतर तो वह अपने बच्चों को किसी ढाबे पर नौकरी करने या किसी वर्कशाप में या मिस्त्री की दुकान पर काम सीखने व हेल्परी करने पर भेजना पसंद करेगा। कम-से-कम इससे वह भविष्य में अपनी रोज़ी-रोटी तो कमा पायेगा। सरकारी बाडों में क्या सीखेगा? तमाम उल्टे पुल्टे काम व बदमाशियां!

ऐसे में सरकारी स्कूल जो कभी खचाखच भरे रहते थे, वीरान होने ही थे। अब वीरान स्कूलों को खोले रखने का क्या मतलब? वहां तैनात स्टाफ़ का खर्चा क्यों सरकारी खजाने पर डाला जाये? ऐसे स्कूलों को बंद कर देना ही पूर्णतया न्यायोचित ठहरा दिया जाता है। बात भी ठीक है। इसी आधार पर हरियाणा सरकार ने करीब 200 स्कूलों को बंद करने का निर्णय ले लिया। जब कुछ ज़्यादा शोर शराबा मचा, सरकार पर दबाव बढा तो सरकारी निर्णय में थोड़ा परिवर्तन किया गया। इसके अनुसार केवल वही स्कूल बंद किये जायेंगे जहां 20 से कम बच्चे होंगे। इससे भी करीब 100 स्कूल बंद हो जायेंगे।

सुधी पाठकों ने पिछले अंकों में पढा होगा कि शिक्षक अपनी नौकरियां बचाये रखने के लिये फ़र्जी नामांकन स्कूल के अपने रजिस्टरों में कर लेते हैं। ऐसे बच्चे पढते तो किसी निजी स्कूल में हैं लेकिन उनकी हाजरी दिखायी जाती है किसी सरकारी स्कूल में। इससे शिक्षकों एवं स्टाफ़ को दोहरा फ़ायदा होता है। नौकरी तो बची ही बची, बच्चों का मिड-डे-मील का पैसा भी हड़पने में आसानी रहती है। अनुसूचित जातियों के बच्चे छात्रवृत्ति लेने मात्र को अपना नाम सरकारी स्कूलों में दाखिला करा लेते हैं तथा पढाई कहीं निजी स्कूलों में जाकर करते हैं।

सोचने समझने वाला गंभीर प्रश्न यह है कि किसी जमाने में खोले गये स्कूलों को आज बंद करने की नौबत क्यों आ गयी? किसी भी शहर, मुहल्ले व गांव की आबादी घटी तो है नहीं, बल्कि बढी है; फ़िर स्कूलों में बच्चों की संख्या क्यों दिन-ब-दिन घटती जा रही है? बढती आबादी को देखते हुए तो अभी स्कूलों की भारी कमी है। लेकिन जनविरोधी शासकवर्ग ने ऐसी रणनीति अपनाई है कि स्कूलों को बंद करने का मार्ग प्रशस्त होता चला जाये। यदि यकायक सरकार स्कूलों को बंद कर दे तो काफ़ी विरोध का सामना करना पड़ता। इसे देखते हुए सरकार ने यह रणनीति अपनाई है।

पूंजीवादी राजनीति के घृणित समीकरण

अभी हाल में जब बिहार में भाजपा और जद (यू) गठबंधन के टूटने की चर्चा थी तब समाचार माध्यम इसे तलाक की संज्ञा दे रहे थे। कहा जा रहा था कि 17 साल के गठबंधन के बाद अब दोनों के बीच तलाक की नौबत आ गयी है। जैसा कि हम जानते हैं इस बीच गठबंधन टूट चुका है यानी तलाक हो चुका है। इसके बाद तलाक पर दोनों ने जश्न मनाया।

जब इस तलाककी चर्चा चल रही थी तभी एक सिरफिरे ने सवाल उठाया कि इस गठबंधन में पति कौन है और पत्नी कौन है? साथ ही यह भी कि इस गठबंधन की संतान कौन है? इस गठबंधन में पति कौन था और पत्नी कौन थी यह विवाद चलता रह सकता है और भारत के पुरुषसत्तात्मक दृष्टिकोण के हिसाब से लोग अपनी राय भी बना सकते हैं पर इससे उत्पन्न संतान के बारे में ज़्यादा विवाद की गुंजाइश नहीं। भाजपा जैसी हिन्दू साम्प्रदायिक पार्टी तथा अपने को धर्म निरपेक्ष कहने वाली जद (यू) जैसी पार्टी के बीच गठबंधन का हमेशा एक ही नतीजा होता है हिन्दू साम्प्रदायिकता को शह मिलना तथा साम्प्रदायिकता विरोध का महज एक अवसरवादी हथियार बन जाना जिसे कुर्सी के लिये सुविधानुसार अपनाया या छोड़ा जा सकता है।

जद (यू) के ठोस मामले को लें। इसने इस समय भाजपा से नाता नरेन्द्र मोदी को लेकर तोड़ा है। उसके अनुसार नरेन्द्र मोदी घोर साम्प्रदायिक व्यक्ति हैं और भाजपा में उनकी बढ़ती प्रमुखता को देखते हुए भाजपा के साथ गठबंधन को बनाये नहीं रखा जा सकता। परंतु यदि नरेन्द्र मोदी घोर साम्प्रदायिक व्यक्ति हैं तो उनकी घोर हिन्दू साम्प्रदायिकता का सबसे घृणित कृत्य तो 11 साल पहले 2002 में घटित हुआ था। गुजरात के सरकार द्वारा प्रायोजित मुस्लिम विरोधी दंगों को अब 11 साल बीत चुके हैं। लेकिन तभी जद (यू) ने भाजपा का साथ क्यों नहीं छोड़ा? पूरे देश में तीखी प्रतिक्रिया और विरोध के बावजूद जद (यू) को नहीं सूझा कि वह गठबंधन को तोड़ दे। यही नहीं, वह 11 साल और गठबंधन में बनी रही।

हिन्दू साम्प्रदायिक भाजपा अपने दम पर सत्ता में केवल तेरह दिन तक रह सकी। लेकिन जब उसने उन पार्टियों के साथ गठबंधन बना लिया जो स्वयं को धर्मनिरपेक्ष कहती थीं तो वह सत्ता में 6 साल रहने में कामयाब हो गयी। इस तरह हिन्दू साम्प्रदायिक भाजपा को केन्द्र में इतने लम्बे समय तक सत्ता में बने रहने में कामयाब बनाया उन दलों ने जो स्वयं को धर्मनिरपेक्षता का तमगा पहनाते हैं और गाहे-बगाहे हथियार की तरह इसका इस्तेमाल करते हैं। जद (यू) के ठोस मामले को लें। इसने इस समय भाजपा से नाता नरेन्द्र मोदी को लेकर तोड़ा है। उसके अनुसार नरेन्द्र मोदी घोर साम्प्रदायिक व्यक्ति हैं और भाजपा में उनकी बढ़ती प्रमुखता को देखते हुए भाजपा के साथ गठबंधन को बनाये नहीं रखा जा सकता।

परंतु यदि नरेन्द्र मोदी घोर साम्प्रदायिक व्यक्ति हैं तो उनकी घोर हिन्दू साम्प्रदायिकता का सबसे घृणित कृत्य तो 11 साल पहले 2002 में घटित हुआ था। गुजरात के सरकार द्वारा प्रायोजित मुस्लिम विरोधी दंगों को अब 11 साल बीत चुके हैं। लेकिन तभी जद (यू) ने भाजपा का साथ क्यों नहीं छोड़ा? पूरे देश में तीखी प्रतिक्रिया और विरोध के बावजूद जद (यू) को नहीं सूझा कि वह गठबंधन को तोड़ दे। यही नहीं, वह 11 साल और गठबंधन में बनी रही।

इस सच्चाई को देखते हुए राजनीतिक तौर पर एकदम नये व्यक्ति को भी यह समझ में आ जाता है कि असल मामला नरेन्द्र मोदी और उनकी हिन्दू साम्प्रदायिकता के विरोध का नहीं है। असल मामला पूंजीवादी चुनावी राजनीति के समीकरण हैं । पूंजीवादी चुनावी राजनीति के समीकरण जद (यू) को यह समझा रहे हैं कि इस मोड़ पर नरेन्द्र मोदी की प्रमुखता वाली भाजपा का साथ उसके लिए घातक होगा। इसलिए यह गठबंधन उसके द्वारा तोड़ दिया गया।

लेकिन सवाल तो खड़ा ही हो जाता है कि नरेन्द्र मोदी को यहां तक पहुंचाने में क्या जद (यू) की भूमिका नहीं है? क्या उसने भाजपा को वह वैधानिकता नहीं प्रदान की जिससे भाजपा आगे बढी। क्या गुजरात नरसंहार के बाद भी गठबंधन में रहकर जद (यू) ने स्वयं नरेन्द्र मोदी को वैधानिकता नहीं प्रदान की?

इस तरह की पार्टियों का भाजपा के साथ गठबंधन भारतीय राजनीति भी हिन्दू साम्प्रदायिकता को आगे बढाता है। इसीलिए ये भी इसके लिए उसमें कम जिम्मेदार नहीं है जितनी स्वयं भाजपा व संघ परिवार।

-नागरिक